भारतीय ज्ञान परंपरा में सामाजिक समावेशन एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

मनीषा कुमारी
सहायक आचार्य
समाजशास्त्र विभाग
ए.पी.सेन मेमोरियल गर्ल्स पी.जी कॉलेज, लखनऊ
ईमेलः manishakumari426@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 24.02.26
Approved: 19.07.26

मनीषा कुमारी

भारतीय ज्ञान परंपरा में सामाजिक समावेशन एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

Vol. XVII, Sp. Issue Aug. 2026
Article No.22, Pg. 168-171

Similarity Check: 06%

Online available at
https://anubooks.com/special-issues?url=jgv-si-apsmgpc-lkn-2026

DOI: *https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI08.022*

सारांष

यह शोध–पत्र भारतीय ज्ञान परंपरा में सामाजिक समावेशन की अवधारणा का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें वेद उपनिषद बौद्ध एवं जैन दर्शन भक्ति आन्दोलन तथा आधुनिक भारतीय संविधान के संदर्भ में समानता, बंधुत्व और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों का अध्ययन किया गया है। भारतीय समाज उच्च आदर्शों और नैतिक मूल्यों पर आधारित है इसमें सहयोग, सहनशीलता, परित्याग कर्तव्य एवं अधिकार, सामूहिक जीवन और योग्यता के अनुसार श्रम विभाजन स्पष्टतः परिलक्षित होता है, यहीं मूल्य भारत को एक समावेशी समाज बनाते हैं जहाँ भिन्न–भिन्न भाषा,धर्म, रीति रिवाज, वेश भूषा ओर विभिन्न संस्कारों वाले लोग इस समाज में मिलजुल कर हजारों वर्षों से रहते आ रहे हैं। इस शोध पत्र का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि सामाजिक समावेशन की जड़ें भारतीय चिंतन में प्राचीन काल से विद्यमान रही हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा सामाजिक समावेशन में एक सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है।

मुख्य शब्दः *भारतीय ज्ञान परंपरा, सामाजिक समावेशन, वेद, उपनिषद, स्मृति, समानता, संविधान, भक्ति आन्दोलन।*

******This article has been peer-reviewed by the Review Committee of JGV.*

https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI08.022

प्रस्तावना

भारतीय समाज अनेकता में एकता का सरवत कृष्णा उदाहरण प्रस्तुत करता है यह विविधताओं से परिपूर्ण है। सामाजिक समावेशन का अर्थ है समाज के प्रत्येक वर्ग को समान अवसर, सम्मान और सहभागिता प्रदान करना। भारतीय ज्ञान परंपरा में "वसुधैव कुटुम्बकम" अर्थात इस संपूर्ण पृथ्वी पर निवास करने वाले व्यक्ति हमारे अपने कुटुंब हैं, तथा "सर्वे भवन्तु सुखिनः" जैसे सिद्धांत सामाजिक समरसता को दर्शाते हैं। हमारी समृद्ध भारतीय ज्ञान परंपरा के अंतर्गत शिक्षक छात्र और पाठ्यक्रम तथा समाज के सभी वर्गों को एक ही बिंदु पर एकात्म किया गया है, जिसमें ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि वह गुरु और शिष्य दोनों की एक साथ रक्षा करें, साथ–साथ पालन–पोषण करें व दोनों मिलकर पूरी ऊर्जा के साथ कार्य करें, हमारा अध्ययन प्रभावशाली और ज्ञानवर्धक हो और हम कभी एक–दूसरे से द्वेश न करें। समावेशन और एकात्मकता का ऐसा सर्वोत्कृष्ट उदाहरण विश्व में कहीं अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। डेलर्स आयोग के प्रतिवेदन में पाश्चात्य देशों में व्याप्त अनेक द्वंद्वों का रोना रोया गया है जैसे स्थानीय बनाम वैश्विक, वैयक्तिक बनाम सार्वभौमिक, परंपरा बनाम आधुनिकता, स्पर्धा बनाम अवसर तथा ज्ञान का विस्फोट बनाम मानव को समझने की क्षमता आदि। यह सभी द्वंद बिखरती हुई सामाजिक व्यवस्था के प्रतिफल हैं, परंतु भारतीय ज्ञान परंपरा में हर प्रकार के द्वंद्व और संघर्ष का समाधान का समन्वय कर पूरे समाज को समावेशित किया गया है।

वैदिक एवं उपनिषदिक आधार

भारतीय ज्ञान परंपरा का मुख्य स्रोत वेद और उपनिषद रहे हैं। ऋग्वेद में एक स्थान पर देवताओं को उस आचरण पर चलने वाला कहा गया है जिसका आधार है कि 'सब एक साथ चले, एक साथ बोले और सबका मन एक हो'। देवजनो का ऐसा आचारण पूजनीय है। यह मंत्र हमें सामाजिक एकता का संदेश देता है। इसी प्रकार उपनिषद के अंतर्गत ईश, केन, कठ, मांडूक्य, तैत्तिरीय छांदोग्य बृहदारण्यक उपनिषद अदि शामिल हैं जिससे प्रस्फुटित आत्मा और ब्रह्म की एकता का सिद्धांत सामाजिक समानता को आधार प्रदान करता है।

बौद्ध एवं जैन परंपरा

गौतम बुद्ध ने करुणा और मैत्री पर आधारित समाज की स्थापना की। गौतम बुद्ध के अनुसार कोई भी व्यक्ति जन्म से बड़ा नहीं होता श्रेष्ठ और निर्माता उसके आचरण से आती है इसलिए अशोक जैसे महान सम्राट ने इस धर्म को अपनाया बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणी सन्यासी जीवन के नियमों में रहकर धर्म के कार्य कर किया करते थे यह ऐसा धर्म था इसके अनुयाई सुदूर देशों में गए और वहां सत्य, अहिंसा, प्राणी मात्र पर दया, प्रेम और करुणा का संदेश फैलाया।

जैन धर्म के संस्थापक वर्धमान महावीर ने 12 वर्षों की कठोर तपस्या की तत्पश्चात सत्य ज्योति के प्रकाश का मिलन हुआ। उन्होंने सम्यक विश्वास, सम्यक ज्ञान और सम्यक आचरण (त्रिरत्न) पर बल दिया उन्होंने दान संग्रह तथा सभी अन्य संप्रदाय के लोगों की सेवा करना और उनका सहयोग करना अपना परम कर्तव्य माना। वर्धमान महावीर ने अहिंसा, अपरिग्रह और अस्तेय के माध्यम से विविध दृष्टिकोणों को सम्मान दिया।

भक्ति आन्दोलन

भक्ति आंदोलन भारत के इतिहास का एक महत्वपूर्ण धार्मिक और सामाजिक आंदोलन था। इसका उदय लगभग 7वीं से 17वीं शताब्दी के बीच हुआ। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य भगवान के प्रति सच्ची भक्ति के माध्यम से मोक्ष प्राप्त करना और समाज में समानता तथा भाईचारे की भावना को बढ़ावा देना था। भक्ति आंदोलन ने भारतीय समाज में सामाजिक समावेशन की भावना को मजबूत किया।

भक्ति आंदोलन के संतों ने यह संदेश दिया कि भगवान तक पहुँचने के लिए किसी जाति, वर्ग या लिंग का भेदभाव आवश्यक नहीं है। उस समय समाज में जाति व्यवस्था बहुत कठोर थी और ऊँच–नीच का भेद गहरा था। लेकिन भक्ति संतों ने इन भेदभावों का विरोध किया और कहा कि सभी मनुष्य भगवान की संतान हैं। उन्होंने सादगी, प्रेम और भक्ति को धर्म का मुख्य मार्ग बताया।

इस आंदोलन में कई संतों और कवियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जैसे कबीर, रैदास, मीरा बाई, गुरु नानक और चौतन्य महाप्रभु। इन संतों ने अपनी रचनाओं और उपदेशों के माध्यम से यह बताया कि ईश्वर की भक्ति सभी के लिए समान रूप से खुली है। उदाहरण के लिए कबीर ने हिंदू–मुस्लिम भेदभाव का विरोध किया और मानवता को सबसे बड़ा धर्म बताया। गुरु नानक ने भी समानता और सेवा का संदेश दिया, जो आगे चलकर सिख धर्म की आधारशिला बना। इसके संतों ने संस्कृत जैसी कठिन भाषा के स्थान पर लोकभाषाओं का उपयोग किया। इससे आम जनता भी उनके विचारों को समझ सकी। भजन, कीर्तन और पदों के माध्यम से उन्होंने अपने संदेशों को समाज के हर वर्ग तक पहुँचाया। इससे समाज के निचले वर्गों और महिलाओं को भी धार्मिक और सामाजिक जीवन में भाग लेने का अवसर मिला।

सामाजिक समावेशन के दृष्टिकोण से भक्ति आंदोलन ने समानता की भावना को बल दिया। इस आंदोलन ने जात–पात और धार्मिक कट्टरता को चुनौती दी और सभी लोगों को एक साथ जोड़ने का प्रयास किया। इसका प्रभाव भारतीय समाज, संस्कृति और साहित्य पर भी गहराई से पड़ा।

इस प्रकार यह केवल एक धार्मिक आंदोलन नहीं था, बल्कि यह सामाजिक सुधार आंदोलन भी था। इसने समाज में समानता और समावेशन की भावना को मजबूत किया और लोगों को प्रेम, भक्ति और मानवता का संदेश दिया। इसलिए भारतीय इतिहास में भक्ति आंदोलन का विशेष महत्व है। कबीर, रैदास और गुरु नानक जैसे संतों ने जातिगत भेदभाव का विरोध किया और मानव समानता का संदेश दिया।

आधुनिक भारत और संविधान

भारतीय संविधान सामाजिक आर्थिक समानता और समाजवाद के सिद्धांत पर आधारित है संविधान में मौलिक अधिकार तथा नीति निर्देशक तत्वों के माध्यम से यह व्यवस्था की गई है कि श्रमिकों दलितों पिछड़ों महिलाओं एवं गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों की जीवन स्तर में सुधार और उनके विकास के लिए निरंतर प्रयास किए जाएं कभी भी धर्म वंश लिंग जाति प्रजाति किसी भी आधार पर किसी भी नागरिक से कोई भेदभाव न होने पाए।

सामाजिक समावेशन की परम्परा को यदि सही अर्थ में कहीं स्वीकार किया गया है तो वह भारतीय संविधान का मौलिक अधिकार खण्ड है, जहाँ बिना लिंग, धर्म, जाति आदि के आधार पर भेदभाव किये हुए व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व के विकास हेतु सुरक्षा प्रदान की गयी है। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का वर्णन संविधान के भाग तीन में अनुच्छेद बारह से पैतीस तक है। इनके माध्यम से देश के प्रत्येक नागरिक को सुरक्षा प्राप्त होती है अगर इनका उल्लंघन होता है तो कोई भी व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय की शरण ले सकता है यह मूल अधिकार राज्य की शक्तियों को सीमित करते हैं और प्रत्येक नागरिक के मानवाधिकारों का हनन होने से रोकते हैं इनके द्वारा समाज के कमजोर वर्गों जैसे महिलाओं बच्चों गरीबों अनुसूचित जातियों जनजातियों को संरक्षण प्राप्त होता है मौलिक अधिकारों के अभाव में इन वर्गों का सरलता से शोषण हो सकता है अतः स्पष्ट है कि यह मौलिक अधिकार एक समावेशी समाज के निर्माण में अपनी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इसी प्रकार भारतीय संविधान के भाग चार में अनुच्छेद छत्तीस से इक्यावन तक का सम्बन्ध राज्य के नीति निर्देशक तत्व से है। इसके अंतर्गत भारत में सामाजिक आर्थिक लोकतंत्र और एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना के हेतु आवश्यक सुझाव दिए गये है। ये आर्थिक असमानता को कम करने तथा सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने तथा नागरिकों को गरिमा पूर्ण जीवन प्रदान करने हेतु नीतियां बनाने के लिए राज्य को निर्देशित करते हैं। संसाधनों का एक समान वितरण, समान कार्य के लिए समान वेतन, सामाजिक सषक्तिकरण और न्याय तथा समाजवादी सिद्धांत राज्य के नीति निर्देशक तत्त्व की ऐसी विशिष्टताएं हैं जो सामाजिक समावेशन को परिलक्षित करती हैं।

समकालीन प्रासंगिकता

हजारों प्रकार के यत्न–प्रयत्न के पश्चात् भी हमारे समाज में सामाजिक असमानता और भेदभाव की चुनौतियाँ

https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI08.022

विद्यमान हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल्य समावेशी समाज निर्माण में सहायक हो सकते हैं। यूनेस्को को प्रेशित इक्कीसवीं शताब्दी के लिए शिक्षा पर अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन में शिक्षा के चार स्तंभों–जानने का अधिगम सीखने का अधिगम साथ साथ रहने का अधिगम तथा बनने का अधिगम की विवेचना की गई है, और ये चारों ही भारतीय ज्ञान परंपरा के अति प्राचीन आधार रहे हैं। क्योंकि भारतीय ज्ञान परंपरा में केवल सीखने का महत्व नहीं है अपितु सीखे हुए ज्ञान के अनुरूप आचरण करना, एक साथ मिलकर रहना और एकात्मक भाव से भारतीय मूल्यों को आत्मसात करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान परंपरा सामाजिक समावेशन की व्यापक अवधारणा प्रस्तुत करती है। जहां समाज के सभी वर्गों के सदस्यों को समता और समानता का अधिकार दिया गया था। यह केवल आध्यात्मिक नहीं बल्कि सामाजिक और संवैधानिक आधार भी प्रदान करती है। अनेकानेक प्रावधानों के कारण वर्तमान समाज में संरचनात्मक प्रकार्यात्मक परिवर्तन देखने को मिल रहा है विभिन्न प्रकार की रूढ़ियों और मृतप्राय परंपराएं, सामाजिक व्यवस्थाएं अब समाप्त हो रही है। समाज के विकास में सभी वर्गों का योगदान अहम होता है कोई भी एक वर्ग अगर पीछे छूट जाए तो वह समाज रीढ़विहीन समाज हो जाता है तथा उसके विकास की संभावनाएं नगण्य हो जाती हैं, इसलिए प्रत्येक समाज एवं राष्ट्र के उत्थान के लिए यह अति आवश्यक हो जाता है कि समाज के सभी वर्ग समावेशी तौर पर साथ मिलकर कार्य करें और राष्ट्र के विकास में अपनी अहम भूमिका निभाएं।

संदर्भ

1. गांधी. एम (1993) सत्य के साथ मेरे प्रयोग–आत्मकथा। नवजीवन प्रकाशन गृह।
2. भारत सरकार (1950) भारत का संविधान। विधि एवं न्याय मंत्रालय।
3. हार्व, पी. (1990) बौद्ध धर्म का परिचय। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस।
4. जैनी, पी. एस. (1998) जैन धर्म का शुद्धि मार्ग। कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस।
5. नुसबाम, एम.सी. (2011) क्षमताओं का निर्माण। बेल्कनैप प्रेस।
6. राधाकृष्णन, एस. (1953) भारतीय दर्शन (खंड–1)। ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस।
7. सेन, ए. (2009) न्याय की अवधारणा। हार्वर्ड विश्वविद्यालय प्रेस।
8. महाजन, धर्मवीर एवं महाजन, कमलेश (2007) भारतीय समाज मुद्दे एवं समस्याएँ। विवेक प्रकाशन जवाहर नगर दिल्ली।
9. अग्रवाल,जी. के. (2020) समाजशास्त्र। साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
10. महाजन, धर्मवीर एवं महाजन, कमलेश (2007) भारत में समाज। विवेक प्रकाशन जवाहर नगर दिल्ली।